

। श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ।

महर्षि दुर्वासा और श्रीदुर्वासा-आश्रम

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं तदन्तर्गत भारतव्यापी
श्रीगौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता, श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय
दशमाधस्तनवर श्रीगौड़ीयाचार्य केशरी
ॐविष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री

श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके
अनुगृहीत

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज
द्वारा सङ्कलित



गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन

तृतीय संस्करण — ५००० प्रतियाँ
श्रीविश्वरूप महोत्सव
३० सितम्बर, २०१२

तृतीय संस्करणकी प्रकाशन-मण्डली

सम्पादन एवं प्रूफ-संशोधन — अमलकृष्ण दास, माधवप्रिय दास
टाइप एवं ले-आउट — शान्ति दासी
कवर-डिजाइन — कृञ्जकलिका दासी

प्राप्तिस्थान

श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ
दानगली, वृन्दावन (उ॰प्र॰)
०९७६०९५२४३५

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
मथुरा (उ॰प्र॰)

श्रीरमणविहारी गौड़ीय मठ
बी-३, जनकपुरी, नई दिल्ली
०९८७१५७७३५४

श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ
राधाकुण्ड रोड, गोवर्धन (उ॰प्र॰)
०९६२७४२६३४३

श्रीराधा-माधव गौड़ीय मठ
२९३, सैक्टर-१४
फरीदाबाद, हरियाणा
०९९११२८३८६९

श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
कोलेरडाङ्गा लेन
नवद्वीप, नदीया (प॰ब॰)
०९१५३१२५४४२

जयश्री दामोदर गौड़ीय मठ
चक्रतीर्थ रोड, जगन्नाथपुरी,
उड़ीसा
०६७५२-२२७३१७

खण्डेलवाल एण्ड सन्स
अठखम्भा बाजार,
वृन्दावन (उ॰प्र॰)
०५६५-२४४३१०१

Please visit us at www.purebhakti.com

समर्पण

हम यह ग्रन्थ गौड़ीय वेदान्त प्रकाशनके संस्थापक एवं श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभीष्ट संस्थापक श्रील रूप गोस्वामी द्वारा प्रवर्तित विशुद्ध ब्रजरस धाराको वर्तमान समयमें सम्पूर्ण विश्वमें अत्यधिक प्रभावशाली पद्धतिसे संरक्षित एवं प्रवाहित करनेवाले श्रीमन्महाप्रभुके नित्य परिकर अपने उन परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके श्रीकरकमलोंमें समर्पित करते हैं, जिन्होंने श्रीब्रजमण्डलमें लुप्त होती श्रीश्रीराधाकृष्णकी विभिन्न लीला-स्थलियोंके संरक्षण एवं जीर्णोद्धारकी प्रचेष्टाओंके अन्तर्गत श्रीदुर्वासा ऋषिकी भजन-स्थलीपर एक अत्यधिक सुन्दर श्रीदुर्वासा ऋषि गौड़ीय आश्रमका निर्माण कराया है।

—प्रकाशन-मण्डली

विषय-सूची

निवेदन	क-घ
महर्षि अत्रि एवं उनकी पत्नी अनुसूयाके पुत्रके रूपमें	
महादेवका दुर्वासाके रूपमें अवतरण	१-५
सत्ययुगमें महर्षि दुर्वासा एवं अम्बरीष-दुर्वासा उपाख्यान	६-१०
त्रेतायुगमें महर्षि दुर्वासा	१०-१७
भगवान् श्रीरामचन्द्र एवं दुर्वासा ऋषि	१०-१३
महाराज श्वेतकि एवं दुर्वासा ऋषि	१३-१४
दुर्वासा ऋषिके विवाहका उपाख्यान	१४-१५
मुद्गल ऋषि एवं दुर्वासा ऋषि	१६-१७
द्वापारमें महर्षि दुर्वासा	१७-३४
महर्षि दुर्वासाकी कृपासे कुन्तीको पुत्रोंकी प्राप्ति	१७-१९
दुर्वासा ऋषिके प्रति भगवान् श्रीकृष्णकी दया	१९-२०
दुर्वासा ऋषि द्वारा श्रीमती राधिकाको रन्धनमें	
सिद्धिका वरदान	२१-२२
दुर्वासा ऋषि द्वारा काम्यवनमें पाण्डवोंके निकट आना	
तथा श्रीकृष्ण द्वारा पाण्डवोंकी रक्षा	२२-२६
गोपियों द्वारा श्रीदुर्वासा ऋषिकी सेवा तथा	
दुर्वासाजी कर्त्ता अभिमानसे रहित	२६-२८
दुर्वासा ऋषि द्वारा श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणीजीको	
वरदान प्रदान	२८-३०
मौषल-संहार-लीला और श्रीदुर्वासा ऋषि	३१-३४
ईशापुरमें स्थित दुर्वासा आश्रम	३५

विष्णुपुरमें स्थित श्रीदत्तात्रेयजीका आश्रम ३५
श्रीपराशर मुनि एवं उनके पुत्र श्रीवेदव्यासका आश्रम ३६-३९



निवेदन

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरिधारी-राधाविनोदविहारीजीकी अहैतुकी करुणासे श्रीब्रजरस-रसिक भक्तों एवं पारमार्थिक व्यक्तियोंके समक्ष “महर्षि दुर्वासा और श्रीदुर्वासा आश्रम” नामक लघु पुस्तिकाका तृतीय संस्करण प्रस्तुत करते हुए हम स्वयंको अत्यन्त धन्य मान रहे हैं।

श्रीदुर्वासा ऋषि और श्रीदुर्वासा आश्रम—दोनोंका ही एक अद्भुत वैशिष्ट्य है, दोनों सत्ययुगसे ही है। प्रायः वर्ष १९९४-९५ ई० में श्रील गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीको “श्रीदुर्वासा आश्रम” नामक श्रीब्रजमण्डलकी एक अत्यधिक प्रभावशाली एवं सुप्रसिद्ध लीलास्थलीकी सेवाका दायित्व प्राप्त हुआ। अपने श्रील गुरुपादपद्म, गुरु-परम्परा एवं सपरिकर श्रीश्रीराधाकृष्णकी अभिलाषा मानकर श्रील गुरुदेवने इस दायित्वको स्वीकार करके अथक प्रयास द्वारा “श्रीदुर्वासा आश्रम” नामक लीलास्थलीका जीर्णोद्धार एवं संरक्षण कराया, श्रीलगुरुदेवने वहाँपर एक भव्य मन्दिर निर्माण करवाकर श्रीदुर्वासाजीके अति प्राचीन श्रीविग्रहकी नित्य सेवा-पूजाकी सुष्ठु व्यवस्थाके साथ ही वहाँपर श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-राधाविनोदविहारी तथा श्रीयमुनादेवी एवं गोपेश्वर शिवके श्रीविग्रहको स्थापित करके उनकी भी नित्य सेवा-पूजाकी व्यवस्था की। आज श्रीलगुरुदेवकी कृपासे प्रायः सब समय, विशेषतः श्रीब्रजमण्डल परिक्रमा एवं श्रीवसन्त-पञ्चमीके शुभावसरपर अनेकानेक श्रद्धालु इस लीलास्थलीमें आकर यहाँके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त करते हैं।

“श्रीदुर्वासा आश्रम” नामक लीलास्थलीकी महिमाको सर्वसाधारण तक पहुँचानेकी शुभेच्छासे ही श्रील गुरुदेवने इस पुस्तिकाकी

ख

विषय-वस्तुको संग्रह किया था, जिसके अन्तर्गत हमें श्रीदुर्वासा ऋषि तथा दुर्वासा-आश्रमके विषयमें विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

कौतुकशाली व्यक्तित्व किसी भी कथा-कहानीको रोचक बना देते हैं। किन्तु यदि वह कथा शास्त्र विहित हो एवं कौतुकशाली व्यक्तित्व वास्तविक हो, तब तो हम स्वाभाविक और सहज रूपसे ही उनके विषयमें सुननेके लिए आकर्षित हो जाते हैं, चाहे उनके क्रियाकलाप हमें विचलित भी क्यों न करें। वे व्यक्तित्व कैसे है? ! फिर उनकी कथामें अग्रसर होनेपर यह विज्ञापित होता है, “अहो! वे तो वास्तवमें एक महान भक्त हैं!” हम उनका चरित्र पढ़ते जाते हैं और जैसे-जैसे हम उनका चरित्र पढ़ते जाते हैं, हम कभी कुछ असन्तुष्ट हो जाते हैं, किन्तु तदुपरान्त पुनः उनके चरित्रसे मोहित हो जाते हैं।

ऐसी लीलाएँ हैं दुर्वासा ऋषिकी! उन्होंने अम्बरीष महाराजको शाप दिया, श्रीमती राधिकाजीको वरदान दिया, द्वारकावासियोंको क्रोधित किया, तथा वे स्वयं कृष्ण एवं बलरामसे मोहित हुए। शिवजीके अंश अवतार दुर्वासा ऋषि एक महानतम भक्त हैं, जिन्होंने भगवान्की इच्छाओंको परम विचित्र (अटपटे) ढंगसे पूर्ण करनेके साथ-साथ ही बहुत-सी शिक्षाजनक लीलाएँ भी की हैं। इस पुस्तिकामें महर्षि दुर्वासाके इतिहासकी सोलह रोचक कथाएँ हैं जो कि सरल-सहज-बोधगम्य कहानीकी शैलीमें लिपिबद्ध हुई हैं।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि जो कोई भी व्यक्ति श्रील गुरुदेव द्वारा इस लघु पुस्तिकामें वितरित रसका आस्वादन करेगा, वह अपने अन्तर हृदयसे स्वयंको अत्यन्त सौभाग्यशाली एवं श्रील गुरुदेवके प्रति कृतज्ञ अनुभव करेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

इस पुस्तिकाके मुद्रणमें भूल-त्रुटि रहना अस्वाभाविक नहीं है। श्रद्धालु पाठकोंके द्वारा इस पुस्तिकाका सार ग्रहण करनेपर हम स्वयंको कृतार्थ मानेंगे।

श्रीराधाष्टमी
२३ सितम्बर, २०१२

श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-कृपालेश-प्रार्थी
प्रकाशन-मण्डली

महर्षि दुर्वासा और श्रीदुर्वासा-आश्रम

ब्रजमण्डलके अन्तर्गत प्रमुख बारह वन हैं। इन बारहों वनोंमेंसे प्रत्येक वनके अन्तर्गत बहुत-से उपवन और उपवनोंके अन्तर्गत बहुत-से शाखा वन हैं। इन द्वादश वनोंमेंसे यमुनाके पूर्वमें भद्रवन, भाण्डीरवन, बिल्ववन (बेलवन), महावन तथा लौहवन और पश्चिममें मधुवन, तालवन, कुमुदवन, बहुलावन, काम्यवन, खदीरवन तथा वृन्दावन हैं। इनमेंसे लौहवनके अन्तर्गत एवं मथुरामें विश्रामघाटसे ठीक यमुनाके उसपार थोड़ी दूरी पर ही दुर्वासाजीका अत्यन्त प्राचीन आश्रम है।

महर्षि दुर्वासा सत्य, त्रेता एवं द्वापर—तीनों युगोंके एक प्रसिद्ध सिद्ध योगी एवं महर्षि हैं। इनकी मृत्युका कहीं भी उल्लेख नहीं है। आज भी वे छिपे हुए वेषमें कहीं-न-कहीं अवश्य वर्तमान होंगे। वे बहुत भिन्न प्रकारके ऋषि हैं। वे कब और क्या करना चाहते हैं, यह समझना बड़ा ही कठिन है। इसलिए उन्हें जानना और समझना सब समय सहज नहीं होता है। वे महादेव शङ्करके अंशसे आविर्भूत हुए हैं। कभी-कभी उनमें अकारण ही भयङ्कर क्रोध भी देखा जाता है। वे सब प्रकारके लौकिक वरदान देनेमें समर्थ हैं।

महर्षि अत्रि एवं उनकी पत्नी अनुसूयाके पुत्रके रूपमें महादेवका दुर्वासाके रूपमें अवतरण

महर्षि दुर्वासाजीका यह आश्रम अर्थात् दुर्वासा ऋषि आश्रम भी बहुत ही प्राचीन स्थल है। यह महर्षि दुर्वासाकी सिद्ध

तपस्यास्थली है एवं तीनों युगोंका प्रसिद्ध आश्रम है। भारतके समस्त भागोंसे लोग इस आश्रमका दर्शन करने और विभिन्न प्रकारकी लौकिक कामनाओंकी पूर्ति हेतु यहाँ आते हैं।

महर्षि अत्रिजी, सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके मानस-पुत्र थे। एक समय ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये त्रिदेव उन्हें वर देनेके लिए उपस्थित हुए। इन तीनोंका दर्शन पाकर अत्रिजी कृतकृत्य हो गये। वे प्रेमसे गद्गद् होकर उनकी स्तुति करने लगे। उन तीनों ईश्वरोंने प्रसन्न होकर उनसे वर माँगनेके लिए कहा। अत्रिजीने पत्नी अनुसूयासे परामर्श कर यह वर माँगा कि आप तीनों हमारे पुत्र हों। 'ऐसा ही हो'—यह कहकर वे त्रिदेव अपने-अपने लोकमें प्रस्थान कर गये।

कुछ दिनोंके बाद देवर्षि नारद वीणापर भगवान्का गुणानुवाद करते हुए सरस्वती, लक्ष्मी तथा उमासे मिले। उन्होंने प्रसङ्गवशतः अनुसूयाजीके पातिव्रत्य धर्मका बड़ा ही बखान करके कहा कि इस समय अत्रिजीकी पत्नी अनुसूयाजी विश्वभरमें अपने पातिव्रत्य धर्मके लिए सबसे प्रसिद्ध नारी हैं। इस त्रिलोकीमें उनसे बढ़कर कोई भी पतिव्रता नारी नहीं हैं।

देवर्षिकी बात सुनकर उन तीनों देवियोंका मुख कुछ उदास-सा हो गया। तीनों देवियोंको यह अभिमान था कि इस त्रिलोकीमें उनसे बढ़कर पतिव्रता नारी कोई भी नहीं है। वे देवर्षि नारदकी बातको सह न सकीं। उन्होंने अपने-अपने पतियों—श्रीब्रह्मा, श्रीविष्णु एवं श्रीमहेशसे अलग-अलग आग्रह किया कि वे अनुसूयाजीके पातिव्रत्य धर्मकी कठिन परीक्षा लें, जिससे कि वे उस कठिन परीक्षामें उत्तीर्ण न हो सकें। किन्तु, तीनों देवोंने अपनी-अपनी पत्नियोंको यह समझाया कि

अनुसूयाजी परम तपस्विनी, पतिव्रता एवं परम भगवद्भक्त हैं। ऐसा करनेसे लेने-का-देना पड़ सकता है। फिर भी वे तीनों देवियाँ पुनः-पुनः अनुसूयाजीकी परीक्षा लेनेके लिए हठ करने लगीं।

अपनी-अपनी पत्नियोंके द्वारा पुनः-पुनः अनुरोध किये जानेपर ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये तीनों ही श्रीअत्रि और अनुसूयाजीके चित्रकूट-स्थित आश्रमके निकट उपस्थित हुए। उस समय तपस्विनी अनुसूयाजी आश्रममें अकेली थीं। अत्रिजी निकट ही एक पर्वतकी कन्दरामें भगवान्की आराधनामें मग्न थे। इन तीनोंने घनघोर जङ्गलके भीतर पर्वत श्रेणियोंके बीचमें स्थित अनुसूयाजीके आश्रममें प्रवेश किया। अनुसूयाजी तीनों देवोंको देखकर उठ खड़ी हुई तथा हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् उनसे निवेदन करते हुए पूछने लगी कि आप जैसे पूज्य अतिथियोंकी मैं क्या सेवा कर सकती हूँ? ऐसा कहकर वे अपने हाथोंमें जल एवं कुछ फल-मूल लेकर उनके सामने उपस्थित हुईं। किन्तु, वे तीनों देव तो साधारण अतिथि थे नहीं। उन्होंने अनुसूयाजीसे कहा—“यदि आप सम्पूर्ण रूपसे निर्वस्त्र होकर हमें भिक्षा दें, तो हम उसे ग्रहण कर सकते हैं, अन्यथा हमलोग अतृप्त होकर चले जायेंगे।”

उनकी इस विचित्र बातको सुनकर अनुसूयाजीने कुछ विचार किया और उनसे कुछ देर तक वहीं प्रतीक्षा करनेके लिए कहकर वे वहाँसे उठकर अपने पति अत्रिजीके पास चली आयीं और उनसे तीनों अतिथियोंकी अत्यन्त अद्भुत भिक्षा ग्रहण करनेकी बात बतायीं। अत्रिजीने ध्यान लगाया और देखा कि ये तीनों और कोई नहीं बल्कि स्वयं ब्रह्मा, विष्णु और महेश

हैं। उन्होंने अपनी पत्नीको निर्देश दिया कि ये तीनों अतिथि कोई साधारण अतिथि नहीं हैं, स्वयं ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं। तुम त्रिदेवोंकी इच्छानुसार उनका सत्कार करो, इसमें कुछ भी हानि नहीं होगी। वे वहाँसे अपने आश्रममें लौट आयीं और त्रिदेवोंसे कहा कि मैं आप अतिथियोंकी इच्छानुसार सेवा करनेके लिए सहमत हूँ, किन्तु आपलोग भी मेरी इच्छानुसार नवजात शिशु बनकर मेरी गोदमें आ जायें। साथ-ही-साथ वे तीनों देव शिशु होकर उनकी गोदमें खेलने लगे। वे उन तीनों शिशुओंका बड़े प्यारसे पालन-पोषण करने लगीं। उन तीनों शिशुओंका नामकरण भी किया गया। उनके नाम हुए—चन्द्रमा, दत्तात्रेय एवं दुर्वासा। ब्रह्माजी चन्द्रके रूपमें, विष्णु दत्तात्रेयके रूपमें और महेश दुर्वासाके रूपमें अवतरित हुए थे।

कुछ दिनोंके बाद सरस्वती, लक्ष्मी और उमा—ये तीनों देवियाँ अपने पतियोंके न लौटनेके कारण बड़ी चिन्तित हुईं। उन्हें देवर्षि नारदसे पता चला कि उन तीनोंके पति शिशु बनकर अनुसूयाजीके गोदमें खेल रहे हैं। ऐसा जानकर वे तीनों एक साथ साधारण वेषमें अनुसूयाजीके आश्रममें उपस्थित हुईं। अनुसूयाजीने उनका आदर-सत्कार करनेके पश्चात् पूछा कि आप कौन हैं? तीनों देवियोंने उत्तर दिया कि हम आपकी बहुएँ हैं। अनुसूयाजीने पूछा—“आप कैसे मेरी बहुएँ हुईं?” उन्होंने कुछ संकोच करते हुए उत्तर दिया—“आपकी गोदमें खेल रहे ये तीनों शिशु अन्य कोई नहीं, बल्कि हमारे पति हैं। क्योंकि हमारे पति आपके पुत्र हैं, अतः हम आपकी बहुएँ हुईं।” अनुसूयाजीने मुस्कुराते हुए उनसे पूछा कि आपलोग क्या चाहती हैं? देवियोंने उत्तर दिया—“हम अपने-अपने पतियोंको पुनः पाना

चाहती हैं। आप कृपाकर इन्हें उनके पूर्व रूपमें हमें लौटा दें, जिससे हम अपने पतियोंकी सेवा कर सकें।” ऐसा सुनकर अनुसूयाजीने कहा कि इस वर्तमान स्वरूपमें वे मेरे पुत्रोंके रूपमें मेरे पास ही रहेंगे, साथ ही वे अपने पूर्व स्वरूपमें अवस्थित होकर आप तीनोंके साथ अपने-अपने धाममें विराजमान भी रहेंगे। यह कथा सत्ययुगके प्रारम्भकी है। पुराणों और महाभारतमें इसका विशद वर्णन है।

सत्ययुगमें महर्षि दुर्वासा एवं अम्बरीष-दुर्वासा उपाख्यान

जब दुर्वासाजी कुछ बड़े हुए, तब माता-पितासे आदेश लेकर वे अन्न-जलका त्यागकर कठोर तपस्या करने लगे। विशेषतः यम, नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान, धारणादि अष्टाङ्गयोगका अवलम्बनकर वे ऐसी सिद्ध अवस्थामें पहुँच गये कि उन्हें बहुत-सी योग-सिद्धियाँ प्राप्त हो गयीं। अब वे सिद्ध योगीके रूपमें विश्वमें विख्यात हो गये। जिसे जो कुछ कहते, वही हो जाता। इनके हजारों शिष्य हुए।

तत्पश्चात् यमुनाके तटपर उन्होंने एक आश्रमका निर्माण किया और वहींपर रहकर आवश्यकताके अनुसार बीच-बीचमें इच्छानुसार भ्रमण भी करते थे। बड़े-बड़े ऋषि-महर्षिगण उनसे मिलनेके लिए वहाँ आते थे। यमुनाके तटपर सुन्दर उपवनमें उनका आश्रम बड़ा ही मनोहर था, जिसमें कोयलें कुहकती थीं, मयूर नृत्य करते थे, हिरण-हिरणियाँ इधर-उधर फुदकते थे। विभिन्न प्रकारके पशु-पक्षी आदि उनके आश्रममें स्वच्छन्द रूपसे विहार करते थे। निकट ही कमलके पुष्पोंसे परिपूर्ण

यमुनाजी कल-कल शब्द करती हुई प्रवाहित होती थीं। इस प्रकार दुर्वासाजीका आश्रम बहुत ही सुहावना एवं मनोहर जान पड़ता था।

दुर्वासा आश्रमसे निकट ही यमुनाके उस पारमें तटपर महाराज अम्बरीषका एक बहुत ही सुन्दर राजभवन था। महाराज अम्बरीष अपनी सुदूर राजधानीसे यहाँ आकर साधन-भजन करते थे। एक समयकी बात है, महाराज अम्बरीषने महाद्वादशीका निर्जला उपवास रहकर रात्रिमें जागरण किया। अगले दिन प्रातःकालमें वे अपनी नित्य क्रिया, स्नान, आह्निक तथा अर्चन-पूजनसे निवृत्त होकर उपस्थित वैष्णव, ब्राह्मण एवं अतिथियोंकी अभ्यर्थना तथा उन्हें भगवत्-प्रसादके द्वारा प्रसन्नकर स्वयं भगवान्का चरणामृत ग्रहणकर महाद्वादशीका पारण करना ही चाहते थे कि महर्षि दुर्वासा वहाँ उपस्थित हुए। महर्षिको देखकर महाराज अम्बरीष बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—“हे महर्षे! आज हमारा परम सौभाग्य है कि हमें आप जैसे अतिथिकी सेवा करनेका सुयोग प्राप्त हुआ है। ठाकुरजीका महाप्रसाद आपके सामने प्रस्तुत है, कृपया ग्रहण करें।” जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि दुर्वासाजी बड़े विचित्र ऋषि थे, उनका स्वभाव निराला था। वे कब क्या करना चाहते हैं, इसे समझना बड़ा ही कठिन था। श्रीदुर्वासा ऋषिने कहा कि मैंने अभी तक स्नानादि नित्य क्रियाएँ समाप्त नहीं की हैं। मैं यमुनामें स्नान आदि कर अभी लौटता हूँ। ऐसा कहकर वे यमुनाके तटकी ओर चले गये।

सूर्योदयके बाद दो घड़ीके भीतर ही पारणका समय था। समय बहुत ही अल्प था, समय समाप्त होने जा रहा था और उधर दुर्वासा ऋषिने आनेमें बहुत देर लगा दी, लौटे नहीं।

महाराज अम्बरीष द्विधामें पड़ गये। यदि निमन्त्रित अतिथिको बिना खिलाये महाद्वादशीका पारण करते हैं, तो ब्राह्मण अतिथिकी अवज्ञा होती है और ऋषि असन्तुष्ट होकर अभिशाप दे सकते हैं। इससे लौकिक सदाचारका उल्लंघन होता है। किन्तु, दूसरी ओर उचित समयपर महाद्वादशीका पारण नहीं करनेसे परमार्थ अर्थात् भक्तिकी हानि होती है। उन्होंने धर्मके तत्त्वोंको जाननेवाले ब्राह्मणोंसे परामर्शकर महाद्वादशीके पारणके निर्दिष्ट समयके भीतर एक बूँद श्रीचरणामृत ग्रहण कर लिया, क्योंकि जो लोग व्रतके दिन निर्जला उपवास करते हैं, उनके लिए दूसरे दिन चरणामृत आदि जलके द्वारा पारणकी विधि शास्त्रोंमें है। किन्तु, जो लोग व्रतके दिन अनुकल्पके रूपमें फल आदि कुछ ग्रहण करते हैं, उनके लिए भगवान्‌के अन्न-प्रसादके द्वारा ही पारणकी विधि है। किसी भी रूपमें पारमार्थिक भक्तिका निरादर नहीं होना चाहिये, अन्यथा भक्ति नष्ट हो जाती है। एक प्रकारसे महाराज अम्बरीष द्वारा लौकिक धर्मको छोड़कर परमार्थकी रक्षा करना ही उचित है। इस प्रकार महाराज अम्बरीषने परमार्थकी महिमाको श्रेष्ठ समझकर चरणामृतसे पारण कर लिया। इस प्रकार महाद्वादशीव्रतका पारण करना भी हुआ और नहीं भी हुआ।

जैसे ही अम्बरीष महाराजने पारण किया कि दुर्वासा ऋषि वहाँ उपस्थित हुए। उन्होंने योगबलसे यह जान लिया कि महाराज अम्बरीषने महाद्वादशीव्रतका पारण कर लिया है। वे क्रोधसे काँपने लगे। उन्होंने कहा कि तुम बहुत ही पाखण्डी हो, तुमने मुझे निमन्त्रण देकर मुझे भोजनके लिए बुलाया और मुझे खिलानेसे पहले स्वयं ही भोजन कर लिया। मैं तुम्हें अभी

इसका दण्ड देता हूँ। ऐसा कहकर उन्होंने अपनी जटाके एक अंशको नोचकर जमीन पर पटक दिया। उस जटासे एक जलती हुई कृत्या राक्षसी प्रकट हुई और महाराज अम्बरीषको जलानेके लिए बड़ी तेजीसे उनकी और अग्रसर हुई। महाराज अम्बरीष हाथ जोड़े हुए सम्पूर्ण रूपसे निर्भीक खड़े थे, क्योंकि वे अनन्य रूपसे भगवान्‌के शरणागत थे। ठीक उसी समय शरणागत भक्तवत्सल भगवान्‌के महाप्रभावशाली चक्र सुदर्शन भक्तकी रक्षाके लिए क्षण भरमें प्रकट हो गये। उन्होंने कृत्या राक्षसीको जलाकर भस्म कर दिया और वे दुर्वासा ऋषिकी ओर अग्रसर हुए। दुर्वासाजी बड़े ही भयभीत हो गये, वे अपने प्राणोंकी रक्षाके लिए बहुत तेजीसे भागे। वे वहाँसे पाताल और स्वर्गादि चौदह लोकोंको पारकर शिवलोकमें पहुँचे और शङ्करजीसे अपनी रक्षाकी प्रार्थना करने लगे। सुदर्शन चक्र बड़ी तेजीसे उनका पीछा कर रहे थे। उन्हें देखते ही शङ्करजीने दुर्वासा ऋषिसे कहा कि तुम बड़े विचित्र हो। भगवान्‌के भक्तोंसे भी उलझ जाते हो क्या तुम उनकी महिमा नहीं जानते? भगवद्भक्तोंके चरणोंमें अपराध करनेवालोंकी मैं कोई भी सहायता नहीं कर सकता। तुम सीधे उन भगवान्‌ विष्णुके पास जाओ, जिनका यह चक्र है वे ही तुम्हारी रक्षा कर सकते हैं, अन्य कोई नहीं।

दुर्वासा ऋषि अतिशीघ्रतापूर्वक विष्णुलोकमें भगवान्‌ विष्णुके श्रीचरणोंमें उपस्थित हुए और अपने प्राणोंकी रक्षाकी प्रार्थना करने लगे—“प्रभो! मेरी रक्षा कीजिये, मैं बड़ा ही दुःखी हूँ। इस जगत्‌में आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी मेरी रक्षा नहीं कर सकता। मैं आपका शरणागत हूँ। आप शरणागतवत्सल

हैं, अतः शरणागतोंकी रक्षा करना ही आपका स्वभाव है।” भगवान् विष्णुने कहा—“मैं भक्त-विद्वेषियोंकी रक्षा नहीं कर सकता। मैं भक्तोंका हृदय हूँ और भक्त मेरे हृदय हैं। मैं भक्तोंको कदापि नहीं छोड़ सकता, मैं उनके पराधीन हूँ। मेरे जिस भक्तके चरणोंमें आपने अपराध किया है, वे भक्त ही आपको क्षमा कर सकते हैं, मैं नहीं कर सकता। अतः यदि आप अपना कल्याण चाहते हैं, तो मेरे भक्त अम्बरीषके निकट ही क्षमा-प्रार्थना करें।”

यह सुनकर महर्षि दुर्वासा बड़े निराश हुए। कोई अन्य उपाय न देखकर उन्होंने महाराज अम्बरीषके निकट जाना ही निश्चित किया। जैसे ही वे महाराज अम्बरीषके निकट उपस्थित हुए, महाराज अम्बरीषने बड़ी नम्रतासे हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। किन्तु, दुर्वासाजी उनके चरणोंमें गिर पड़े और अपने कुकृत्यके लिए उनसे क्षमा माँगते हुए अपने प्राणोंकी रक्षाकी प्रार्थना करने लगे। महाराज अम्बरीषने चक्र सुदर्शनकी स्तुतिकर उन्हें शान्त किया। दुर्वासाजी भक्तिकी ऐसी अद्भुत महिमा देखकर स्तब्ध रह गये और बोले—“भगवद्भक्त धन्य है! आज मैंने भगवान् अनन्तदेवके भक्तोंकी महिमाको देखा; राजन! मैंने आपके प्रति अपराध किया, तथापि आप मेरे लिए मङ्गलकी ही कामना कर रहे हैं। जिन्होंने भक्त-वत्सल भगवान् श्रीहरिके चरणकमलोंको दृढ़ प्रेमभावसे ग्रहण किया है, उन साधुपुरुषोंके लिए कौन-सा कार्य कठिन है? जिनका हृदय इतना उदार है, वे महात्मा फिर किस वस्तुका परित्याग नहीं कर सकते, जिनकी मङ्गलमय वाणीके श्रवणमात्रसे जीवका हृदय निर्मल हो जाता है, उन तीर्थपाद श्रीभगवान्के चरणकमलोंके दासोंके लिए

कौन-सा कर्त्तव्य बाकी रह जाता है अर्थात् कुछ भी बाकी नहीं रहता। अहो! आपने मुझपर महान अनुग्रह किया है। आपने मेरे अपराधोंको भुलाकर मेरे प्राणोंकी रक्षा की है।”

जबसे दुर्वासाजी अपने प्राणोंको बचानेके लिए इधर-उधर भाग रहे थे, तबसे महाराज अम्बरीषने भोजन नहीं किया था। वे उनके लौटनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने दुर्वासाजीके चरण पकड़ लिए और उन्हें बड़े प्रेमसे भोजन कराया। दुर्वासाजी भोजन करके तृप्त हुए और बड़े आदरपूर्वक उन्होंने महाराज अम्बरीषसे कहा—“राजन! अब आप भी भोजन करें।”

दुर्वासाजीने सन्तुष्ट होकर महाराज अम्बरीषके गुणोंकी प्रशंसा की और अपने आश्रमको लौट आये। अम्बरीष महाराजके संसर्गसे महर्षि दुर्वासाका चरित्र परिवर्तित हो गया। अब वे ब्रह्मज्ञान और अष्टाङ्गयोग आदिकी तुलनामें शुद्धभक्तिकी महिमाकी अधिकताको उपलब्धिकर भक्तिमार्गको ग्रहण किया।

त्रेतायुगमें महर्षि दुर्वासा

भगवान् श्रीरामचन्द्र एवं दुर्वासा ऋषि

उक्त घटनाके पश्चात् दुर्वासा ऋषि ब्रजमण्डलमें यमुना तट पर स्थित आश्रमपर अधिक निवास करने लगे। वहीँसे वे आवश्यकताके अनुसार इस जगत्में एवं अन्यान्य लोकोंमें भ्रमण करते रहते थे। विभिन्न पुराणों एवं महाभारतमें त्रेतायुगमें भी घटित महर्षि दुर्वासाकी बहुत-सी कथाओंका विवरण मिलता है।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने इस धराधामपर अवतरित होकर ग्यारह हजार वर्ष तक लीलाएँ कीं। अन्तमें ब्रह्माजीकी इच्छासे

कालपुरुष एक महर्षिका रूप धारणकर श्रीरामचन्द्रजीके समीप आया। उसने श्रीरामचन्द्रजीसे एकान्त स्थानमें कुछ वार्तालाप करनेके लिए निवेदन किया, जिससे और कोई भी व्यक्ति उसे न सुन सके। श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणकी ओर देखकर कहा—“लक्ष्मण! तुम स्वयं राजभवनके द्वारपर खड़े होकर किसीको भी भीतर प्रवेश न करने देना। यदि किसी प्रकार कोई व्यक्ति हम दोनोंके वार्तालापके बीच उपस्थित हुआ, तो मैं उसे प्राणदण्ड दूँगा।” लक्ष्मणजी राजभवनके द्वारपर उपस्थित हुए। इधर कालपुरुष और श्रीरामचन्द्रजीमें वार्तालाप होने लगा। कालपुरुषने भगवान् श्रीरामचन्द्रको श्रीब्रह्माजीका सन्देश सुनाया कि अब आपकी लीलाका समय पूरा हो चुका है, इसलिए आपको अपनी लीलाको संगोपनकर अपने नित्य धाममें गमन करना चाहिये। अभी वार्तालाप हो ही रहा था कि उसी समय महर्षि दुर्वासा राजभवनके द्वारपर पहुँचे और लक्ष्मणजीसे बोले कि मैं अत्यावश्यक कार्य हेतु तुरन्त श्रीरामचन्द्रजीसे मिलना चाहता हूँ। लक्ष्मणजीने कहा—“महात्मन्! आप अपना कार्य बतलायें, मैं उसे शीघ्र ही पूर्ण करूँगा।” किन्तु, क्राधी स्वभाववाले दुर्वासाजीने कहा—“मुझे रामचन्द्रजीसे ही मिलना है; यदि तुम मुझे उनसे मिलने नहीं दोगे, तो मैं राजा रामचन्द्र तथा राज्यकी सारी प्रजाओंको अभिशाप देकर भस्म कर दूँगा।” लक्ष्मणजीने मन-ही-मन विचार किया कि श्रीरामचन्द्रजी और सारी प्रजाओंके साथ स्वयंको भस्म करानेकी अपेक्षा मेरा अकेला भस्म होना ही उचित है। ऐसा सोचकर वे अकेले रामचन्द्रजीके पास पहुँचे।

यद्यपि कालपुरुषके साथ श्रीरामचन्द्रजीका वार्तालाप पूरा हो चुका था, तथापि कालपुरुष अभी भी भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके

निकट उपस्थित था। श्रीरामचन्द्रजीने पूछा—“लक्ष्मण! तुम असमयमें क्यों आये?” लक्ष्मणजीने कहा—“प्रभो! द्वारपर महर्षि दुर्वासाजी उपस्थित हुए हैं। वे केवल आपसे ही और अभी तुरन्त मिलना चाहते हैं। विलम्ब होनेपर सारी प्रजाओंके साथ आपको और मुझे भी अपने अभिशापसे भस्म करनेके लिए प्रस्तुत हैं।” श्रीरामचन्द्रजीने कालपुरुषको विदा किया और बड़े उदास होकर गम्भीर स्वरसे बोले—“लक्ष्मण! क्या तुम्हें मेरी प्रतिज्ञाका स्मरण है? मैंने वार्तालापके बीच असमयमें आनेपर किसी भी व्यक्तिको प्राणदण्ड देनेकी प्रतिज्ञा की है। प्रिय व्यक्तिका त्याग करना ही सत्-पुरुषोंके लिए प्राणदण्डके समान है। अतः मैं सम्पूर्ण जीवनके लिए तुम्हारा परित्याग करता हूँ।”

लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके श्रीचरणोंमें प्रणामकर राजभवनसे निकलकर सीधे सरयु नदीके तटपर पहुँचे। वहाँ वे सरयुमें स्नानकर अपने चित्तको समाहितकर ध्यानस्थ हो गये और अपने नित्य धाममें पहुँच गये।

इधर श्रीरामचन्द्रजीने दुर्वासाऋषिको बुलवाकर उनका बड़ा ही आदर सत्कार किया और पूछा—“महर्षे! मैं आपकी क्या सेवा करूँ?” दुर्वासाऋषिने कहा—“मैं बहुत ही भूखा हूँ। आपके घरपर जो कुछ भी खाद्य सामग्री प्रस्तुत हो, उसे मुझे तुरन्त खिलाएँ।” घरमें जो कुछ खाद्य द्रव्य उपलब्ध थे, श्रीरामचन्द्रजीने उसे ऋषिके सामने परोस दिया। ऋषि उस सुस्वादु खाद्य सामग्रीको पेट भर भोजनकर सन्तुष्ट हुए और वहाँसे विदा हो गये।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अनुज लक्ष्मणके वियोगमें बहुत दुःखी हुए। उन्होंने लक्ष्मणजीके स्वधाम-गमनका समाचार पाकर स्वयं

भी स्वधाम-गमन करनेका निश्चय किया। भगवान् श्रीरामचन्द्रने अपने दोनों पुत्रों—लव, कुश तथा अपने भाईयोंके पुत्रोंको पृथक्-पृथक् राज्योंपर अभिषिक्त किया तथा स्वयं अयोध्याकी सारी प्रजाको साथ लेकर सरयुके पवित्र तटपर उपस्थित हुए। वहाँ उन्होंने सबके साथ स्नान किया। इतनेमें आकाशसे सूर्यके समान चमकते हुए लाखों विमान वहाँ उपस्थित हुए। श्रीरामचन्द्रजी उपस्थित जनसमूहके साथ उन विमानोंमें चढ़कर अपने धाममें उपस्थित हुए।

यहाँ श्रीरामचन्द्रजी द्वारा लक्ष्मणजीका त्याग करना एक बहानामात्र था। श्रीरामचन्द्र लक्ष्मणका त्याग कभी नहीं कर सकते, क्योंकि लक्ष्मणजी धामस्वरूप हैं। वे भगवान्के प्रत्येक अवतारमें उनके साथ ही रहते हैं और उनकी सब प्रकारकी लीलाओंमें सहायक होते हैं। इस प्रकार लक्ष्मणजी नित्य साकेत धाममें श्रीरामचन्द्रजीसे पहले ही उपस्थित होकर उनके लिए प्रतीक्षा कर रहे थे। श्रीरामचन्द्रजीके स्वधाममें आगमनपर उन्होंने उनका स्वागत किया।

महाराज श्वेतकि एवं दुर्वासा ऋषि

प्राचीन कालमें इन्द्रके समान बल और पराक्रमसे सम्पन्न श्वेतकि नामके एक राजा थे। उस कालमें उनके जैसा यज्ञ करानेवाला, दाता और बुद्धिमान कोई अन्य राजा नहीं था। उन्होंने प्रचुर दान-दक्षिणावाले बहुत-से बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। यज्ञ और दानके अतिरिक्त उनके मनमें दूसरा कोई विचार ही नहीं उठता था। वे नये-नये यज्ञोंके अनुष्ठान और नाना प्रकारके दानकार्योंमें लगे रहते थे। राजाके लिए यज्ञ करते-करते ऋत्विजोंकी आँखें धुँके प्रभावसे व्याकुल

हो उठीं, आहुति देते-देते वे थक गये। उनकी अनुमति लेकर राजाने यज्ञोंको सम्पन्न करनेके लिए नये-नये ऋत्विजोंको नियुक्त किया, किन्तु वे भी थक गये। राजाके द्वारा ढूँढनेपर भी अब उन्हें यज्ञ करानेवाले अन्य कोई ऋत्विज नहीं मिले। अन्तमें राजा उपस्थित ऋत्विजोंके शरणागत हुए। उन्होंने राजाको परामर्श दिया कि वे महादेव श्रीरुद्रके समीप जायें, वे ही इसकी कोई व्यवस्था कर सकते हैं। महाराजा श्वेतकि कैलाश पर्वतपर जाकर श्रीरुद्रदेवको प्रसन्न करनेके लिए बिना खाये-पिये तीव्र तपस्या करने लगे। उनकी घोर तपस्याको देखकर शङ्करजीने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिया और उनसे वर माँगनेके लिए कहा। महाराज श्वेतकिने अमित तेजस्वी श्रीरुद्रके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—“देव देवेश! सुरेश्वर! मैं सौवर्ष तक चलनेवाले एक महत यज्ञ आरम्भ करना चाहता हूँ, आप यदि मुझ पर प्रसन्न हैं, तो आप स्वयं चलकर मेरा यज्ञानुष्ठान करवायें।” शङ्करजी मुस्कुराते हुए बोले—“यज्ञ कराना हमारा कार्य नहीं है। मैं स्वयं तो तुम्हारा यज्ञ नहीं कराऊँगा, किन्तु मेरे ही अंशभूत एक महाभाग श्रेष्ठ द्विज हैं, जो दुर्वासाके नामसे विख्यात हैं, वे ही तुम्हारा यज्ञ करार्येंगे। रुद्रदेवने महर्षि दुर्वासाको बुलाकर राजा श्वेतकिका यज्ञ पूर्ण करानेके लिए आदेश दिया। महर्षि दुर्वासाने रुद्रदेवकी आज्ञाको शिरोधार्यकर विधि-विधानपूर्वक राजाका यज्ञ करवाया। महाराजा श्वेतकिकी इच्छा पूर्ण हुई और उन्होंने दुर्वासाको प्रचुर दक्षिणा देकर सन्तुष्ट किया।

दुर्वासा ऋषिके विवाहका उपाख्यान

महर्षि दुर्वासा बड़े ही तेजस्वी ऋषि थे तथा सर्वत्र ही उनकी बड़ी ख्याति थी। एक समय महाराजा उर्व अपनी विवाह योग्य

कन्या कन्दलीके लिए योग्य वर ढूँढ़ रहे थे। कन्दली बड़ी ही रूप और यौवन-सम्पन्ना किशोरी थी, किन्तु साथ ही बड़ी कटुभाषी एवं झगड़ालू भी थी और बात-बातपर क्रोधित हो जाती थी। इसलिए महाराज उर्व किसी योग्य वरसे अपनी पुत्रीका विवाह करना चाहते थे। वे अपनी कन्या कन्दलीको लेकर महर्षि दुर्वासाके आश्रमपर पहुँचे। उन्होंने बड़ी नम्रतापूर्वक दुर्वासाजीको प्रणाम किया तथा दुर्वासाजीसे अपनी कन्या कन्दलीको पत्नीके रूपमें ग्रहण करनेके लिए प्रार्थना की। ऋषिने रूप-यौवनसे सम्पन्न कन्दलीको देखकर अपनी सम्मति दे दी। जब विवाह होनेका समय आया, तो महाराजाने महर्षिसे यह प्रार्थना की कि आप कृपाकर इसके अपराधोंको क्षमा करेंगे। अन्ततः इसके सौ अपराधोंको अवश्य ही क्षमा करेंगे। दुर्वासाजीने इसे स्वीकार कर लिया। विवाह होनेके बाद जब कन्दली दुर्वासाजीके आश्रममें आयी तब दुर्वासाजीको यह ज्ञात हुआ कि कन्दली तो कलहप्रिय है, बात-बातमें अपमानजनक कटु व्यवहार करती है। बहुत कहने-सुननेपर भी उसका स्वभाव परिवर्तित नहीं हुआ। कुछ ही दिनोंमें उसने जब दुर्वासाजीके प्रति सौसे भी अधिक अपमानजनक व्यवहार किये, तब महर्षिसे रहा नहीं गया और उन्होंने अभिशाप देकर उसे भस्म कर डाला।

कुछ समय और व्यतीत होनेके बाद दुर्वासाजी कुछ दिनोंके लिए द्वारकामें निवास कर रहे थे। वहाँ यदुवंशमें उत्पन्न एक रूप-यौवन-सम्पन्ना एकानंशा नामक कन्या थी। यादवोंने इस कन्याका विवाह महर्षि दुर्वासासे करवाया था। किन्तु, कुछ दिनोंके बाद ही महर्षि दुर्वासाने उससे विरक्त होकर उक्त एकानंशाका भी त्याग कर दिया और पुनः अपने आश्रममें लौट आये।

मुद्गल ऋषि एवं दुर्वासा ऋषि

कुरुक्षेत्रमें मुद्गल नामक एक ऋषि थे। वे बड़े ही धर्मात्मा और जितेन्द्रिय थे। खेतोंसे फसल कट जानेके बाद जो अन्नके दाने खेतमें गिर जाते थे, वे उन्हें एकत्रितकर अपनी जीविका चलाते थे। वे सदा सत्य बोलते और किसीकी भी निन्दा नहीं करते थे। उन्होंने अतिथियोंकी सेवाका व्रत ले रखा था। वे अपनी स्त्री और पुत्रके साथ रहकर पन्द्रह दिनोंमें कुछ अन्न संग्रह करते थे और उसके द्वारा इष्टीकृत नामक यज्ञका अनुष्ठान करते तथा अतिथियोंकी सेवाकर बचे हुए अन्नसे पन्द्रह दिनोंमें एक ही बार भोजन करते थे। जब तक वे भोजन नहीं करते, तब तक सैकड़ों अतिथियोंके द्वारा भोजन किये जानेपर भी वह भोज्य पदार्थ समाप्त नहीं होता था।

एक समय दुर्वासा ऋषि पागलोंकी भाँति अटपटा वेष धारणकर, वस्त्रहीन अवस्थामें नाना प्रकारके कटु वचन बोलते हुए महात्मा मुद्गलके आश्रममें पधारे और बोले—“विप्रवर! मुझे बड़ी भूख लगी है, मैं भोजन करना चाहता हूँ।” मुद्गलने कहा—“महर्षे! आपका स्वागत है।” ऐसा कहकर उन्होंने दुर्वासाजीको पाद्य, अर्घ्य तथा आचमनीय आदि पूजन सामग्री भेंट की और उन्हें भोजन अर्पित किया। दुर्वासाजीने प्रायः सारा भोजन खा लिया और जूठन लेकर अपने समस्त अङ्गोंमें लगा लिया और फिर वे जैसे आये थे, वैसे ही चल दिये। मुद्गलजी सपरिवार भूखे रह गये।

पन्द्रह दिनोंके बाद पुनः दूसरा पर्वकाल आनेपर दुर्वासाजी पुनः मुद्गल ऋषिके निकट पहुँचे और पहली बारकी भाँति पुनः उन्होंने सारा अन्न खा लिया। मुद्गल मुनि पुनः अगले

पर्वकी तैयारी करने लगे। पन्द्रह दिनोंके पश्चात् ठीक समयपर पुनः दुर्वासाजी पहुँचे और तीसरी बार भी उन्होंने सारा-का-सारा अन्न खा लिया। इस प्रकार लगातार छः बार दुर्वासाजीने ठीक पर्वके समय उपस्थित होकर समस्त अन्न ग्रास कर लिया। लगातार इतने दिनों तक भूखे रहनेपर भी मुनिके मनमें कोई विकार नहीं हुआ। उनके हृदयको क्रोध, द्वेष, व्याकुलता और अपमानने स्पर्श तक नहीं किया। ऐसा देखकर महर्षि दुर्वासा अत्यन्त प्रसन्न हुए और वे मुद्गल मुनिसे बोले—“ब्रह्मन्! इस संसारमें ईर्ष्या, द्वेष तथा अभिमानरहित होकर दान देनेवाला मनुष्य तुम्हारे समान अन्य दूसरा नहीं है। भोजनसे प्राणोंकी रक्षा होती है। भूखा रहनेसे मन चञ्चल होता है, उस समय उस चञ्चल मनको रोकना बड़ा ही कठिन होता है। किन्तु तुम सिद्ध हो चुके हो, क्योंकि तुमने अपने चञ्चल मन एवं सभी लोकोंको अपनी कठोर तपस्यासे जीत लिया है, अतः तुम्हें स्वर्गलोककी प्राप्ति हो।” इतनेमें ही स्वर्गसे एक विमान आया, किन्तु स्वर्गलोकके गुण और दोषोंको नश्वर जानकर मुद्गल मुनिने उसे लौटा दिया।

द्वापरमें महर्षि दुर्वासा

महर्षि दुर्वासाकी कृपासे कुन्तीको पुत्रोंकी प्राप्ति

वसुदेवजी यदुवंशी महाराज शूरसेनके पुत्र थे। महाराज शूरसेनकी एक कन्या भी हुई जिसका नाम पृथा था। भूमण्डलमें उसके रूपकी तुलनामें कोई दूसरी स्त्री नहीं थी। शूरसेनने अपने सन्तानहीन फुफेरे भाई कुन्तिभोजको अपनी पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार वह कन्या दे दी तथा कुन्तिभोजने उस कन्याको गोद

ले लिया। तबसे उस कन्याका एक नाम कुन्ती भी हुआ। पिता कुन्तिभोजने कुन्तीको घरपर देवताओंके पूजन और अतिथियोंके सत्कारका कार्यभार सौंपा था। एक समय कठोर व्रतका पालन करनेवाले तथा धर्मके विषयमें अपने निश्चयको सदा गुप्त रखनेवाले दुर्वासाजी राजा कुन्तिभोजके राजभवनमें पधारे। ऋषि बड़े उग्र स्वभावके थे तथा उनका हृदय अत्यन्त कठोर था। कुन्ती बड़ी सावधानीसे उनकी सेवा करने लगी। राजकुमारी कुन्तीने सब प्रकारके प्रयत्नोंसे उन्हें पूर्ण सन्तुष्ट कर दिया। दुर्वासाजीने कुन्तीको अथर्ववेदीय प्रसिद्ध वशीकरण मन्त्र प्रदान किया और उसके प्रयोगकी विधि भी बतला दी। तत्पश्चात् वे मुनि उससे बोले—“इस मन्त्रके द्वारा तुम जिस-जिस देवताका आह्वान करोगी, उस देवताके अनुग्रहसे तुम्हें पुत्र प्राप्त होगा।” ब्रह्मर्षि दुर्वासाके ऐसा कहनेपर कुन्तीके मनमें बड़ा कौतूहल उत्पन्न हुआ। वह राजकन्या अभी कुमारी थी, फिर भी उसने मन्त्रकी परीक्षाके लिए सूर्यदेवका आह्वान किया। आह्वान करते ही उसने सूर्यदेवको अपने सामने उपस्थित देखा। इस महान आश्चर्यकी बातको देखकर निर्दोष अङ्गोवाली कुन्ती चकित हो उठी। सूर्यदेवने कहा—“सुन्दरी कुन्ती! मैं वही सूर्यदेव ही हूँ, जिसका तुमने आह्वान किया है। मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ? मैं तुम्हें पुत्रकी प्राप्ति करानेके लिए उपस्थित हुआ हूँ।” कुन्ती लोक-लज्जाके भयसे संकुचित हो उठी। वह नारी-सुलभ-लज्जाके भी विवश थी। सूर्यदेवने पुनः कुन्तीसे कहा—“राजकुमारी! तुम्हें बड़ा ही शूरवीर, महादानी और स्वाभिमानी, दिव्य कृण्डल और कवचको धारण किये हुए एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न होगा, किन्तु पुत्र प्राप्त करके भी तुम्हारा

कुँआरापन अटूट ही रहेगा।” ऐसा कहते ही कुन्तीको एक पुत्र हुआ। वही पुत्र आगे चलकर महावीर कर्णके रूपमें प्रसिद्ध हुआ। तत्पश्चात् इसी प्रकार मन्त्र प्रयोग द्वारा आह्वान करनेपर धर्मराज, पवनदेव एवं देवराज इन्द्रके द्वारा भी कुन्तीको क्रमशः युधिष्ठिर, भीम एवं अर्जुन जैसे सुपुत्र प्राप्त हुए। यह महर्षि दुर्वासाजीकी कृपाका ही फल था।

दुर्वासा ऋषिके प्रति भगवान् श्रीकृष्णकी दया

स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण ब्रजमें जन्म लेकर जब कुछ बड़े हो गये थे, तब एक समय वे दाम, श्रीदाम, सुदाम, वसुदाम, स्तोत्रकृष्ण, उज्ज्वल, लवङ्ग, सुबल तथा मधुमङ्गल आदि सखाओंके साथ गोकुल स्थित रमणरेतीमें बाल्यक्रीड़ा कर रहे थे। सखालोग कभी एक-दूसरेपर धूल फेंक रहे थे, कभी आँखमिचौनी खेल रहे थे और कभी एक-दूसरेसे परस्पर भिड़कर एक-दूसरेको पराजित करनेकी चेष्टा कर रहे थे। पराजित होनेवाला अपने कन्धोंपर पराजित करनेवालेको बैठाकर कुछ दूर तक ले जाता था। इस बीचमें दुर्वासाजी विचरण करते हुए उसी ओरसे निकले। गोपबालकोंकी मनोहारी क्रीड़ाओंको देखकर, विशेषतः कृष्ण और बलदेवका अनुपम सौन्दर्य-माधुर्यको देखकर वे स्थिर होकर उन्हें एकटक निहारने लगे। दुर्वासा ऋषिको अपनी ओर निहारते हुए देखकर श्रीकृष्णने श्रीदामका हाथ पकड़ लिया और ऋषिके समीप पहुँचे। ये दोनों बच्चे धूलसे धूसरित हो रहे थे। श्रीकृष्णको समीप आया देखकर दुर्वासाजी स्थिर न रह सके, वे काँपते हुए बैठ गये। कृष्णने उनसे मुस्कुराते हुए और अङ्गभङ्गी करते हुए पूछा—“बाबा! मैंने श्रीदामको पराजित कर दिया है ना?” कृष्ण इस प्रकार

बार-बार दुर्वासा ऋषिसे पूछने लगे। किन्तु, दुर्वासाजी कोई उत्तर न दे सके। वे स्तम्भित हो गये और कुछ भी बोल न सके। कृष्णने पुनः पूछा—“बाबा बोलते क्यों नहीं, गूँगे तो नहीं हो।” यह कहकर कृष्ण दुर्वासाकी गोदीमें बैठ गये और उनकी दाढ़ी पकड़ते हुए बोले—“बाबा! बोलो न, मैं जीत गया और श्रीदाम पराजित हो गया।” किन्तु, दुर्वासा ऋषि फिर भी कुछ न बोल सके। उन्हें मौन देखकर कृष्ण उनकी गोदीसे उठकर अङ्गभङ्गी करते हुए मुस्कुराने लगे। तब हठात् दुर्वासाजी श्रीकृष्णके मुखमें बलात् खिंच गये। कृष्णके मुखमें उन्होंने कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंको देखा, कोटि-कोटि ब्रह्मा, विष्णु और महेशको भी देखा। वे कभी एक ब्रह्माण्डमें प्रवेश करते, और कभी अन्य ब्रह्माण्डमें। इस प्रकार घूमते-घूमते मानो करोड़ों युग बीत गये। सौभाग्यवश वे एक ऐसे ब्रह्माण्डमें पहुँचे जहाँ श्रीकृष्णकी प्रकट लीला चल रही थी और उस लीलामें पूर्वकी भाँति वे श्रीकृष्ण और सखाओंके पास पहुँचे। उस समय ज्योंही कृष्णने मुस्कराकर मुख खोला तो दुर्वासाजी कृष्णके मुखसे बाहर आ गये। दुर्वासाजी कृष्णका ऐसा अद्भुत लीला चरित्र देखकर उनके चरणोंमें गिर गये एवं उनकी स्तव-स्तुति करने लगे। कृष्णकी कृपासे दुर्वासाजीका जीवन कृतकृत्य हो गया। इस लीलासे पूर्व दुर्वासा ऋषिके मनमें यह शङ्का थी कि श्रीकृष्ण केवल नन्दनन्दन हैं परब्रह्म नहीं, किन्तु अब वे श्रीनन्दनन्दनको ही परमपरात्पर ब्रह्म—स्वयं भगवान् जानकर कोटि-कोटि बार दण्डवत् प्रणामकर अपने आश्रममें लौट गये। श्रीकृष्ण भी भक्त दुर्वासापर कृपाकर ग्वालबालोंके साथ खेलते हुए वहाँसे दूसरी ओर निकल गये।

दुर्वासा ऋषि द्वारा श्रीमती राधिकाको रन्धनमें सिद्धिका वरदान

एक समय अपनी कठोर तपस्या एवं कठोर स्वभावके लिए प्रसिद्ध दुर्वासा ऋषि गोपराज वृषभानु महाराजके राजभवनमें पधारे एवं वृषभानु महाराजके निवेदनसे वे कुछ दिन तक वहींपर रहे। वृषभानु महाराजजीने अपनी सर्वगुण सम्पन्ना लाडली कन्या कुमारी राधिकाको उनकी सेवा-शुश्रूषाके लिए नियुक्त किया। राजकुमारी राधिका द्वारा की गयी प्रीतिपूर्ण सेवा-शुश्रूषासे महर्षि बड़े सन्तुष्ट हुए और उन्होंने वरदान देते हुए कहा—“बेटी तुम पाककला (रन्धन) में अत्यन्त निपुण होओगी, तुम्हारे द्वारा प्रस्तुत की हुई प्रत्येक भोज्य-सामग्री अमृतसे भी अधिक सुस्वादु होगी तथा वह बल, बुद्धि, सौन्दर्य एवं आयुवर्धक होगी। उसका सेवन करनेवाला व्यक्ति कभी किसीसे पराजित नहीं होगा, उसके शरीरकी कान्ति कभी भी क्षीण नहीं होगी।” ऐसा कहकर वे अपने आश्रममें लौट गये। व्रजमें सर्वत्र ही श्रीमती राधिकाजीकी पाककला (रन्धन) की निपुणता प्रसिद्ध हो गयी।

यशोदा मैयाने भी व्रजवासियोंसे विशेषतः पौर्णमासीजीसे राधिकाजीकी पाककलामें सिद्धि तथा उनके द्वारा रन्धनकी हुई सामग्रियोंका प्रभाव सुना। वे कृष्णको श्रीमती राधिकाके द्वारा पकाये गये सुस्वादु भोज्य पदार्थोंको खिलाना चाहती थीं। उन्होंने सोचा कि किसी प्रकारसे राधिकाको अपने राजभवनमें बुलाकर रसोई बनवानी चाहिये। मेरा बेटा बहुत ही दुबला-पतला और कमजोर है, भोजनमें उसकी रुचि नहीं है। इधर प्रायः उसे नाना प्रकारके योग और आसुरी मायासे युक्त दुष्ट दैत्योंसे सामना करना पड़ता है। ऐसा सोचकर यशोदा मैयाने योगमाया पौर्णमासी,

कुन्दलता, विशाखा आदिकी सहायतासे जावटमें निवास करनेवाली राधाजीकी सास जटिलाको समझा-बुझाकर श्रीमती राधिकाको प्रतिदिन उनके गृहमें आकर पाक करनेके लिए मना लिया। गौड़ीय गोस्वामियोंके ग्रन्थोंमें इसका विशद विवरण संरक्षित है।

दुर्वासा ऋषि द्वारा काम्यवनमें पाण्डवोंके निकट आना तथा श्रीकृष्ण द्वारा पाण्डवोंकी रक्षा

पापाचारी दुरात्मा दुर्योधनने दुःशासन, कर्ण और शकुनिके परामर्श और सहायतासे जुएमें छल-कपटसे धर्मात्मा पाण्डवोंको जीतकर उन्हें बारह वर्षोंके लिए वनवासमें भेज दिया था। पाण्डव लोग उस समय काम्यवनमें निवास करने लगे। वे किसी प्रकारसे भिक्षावृत्तिसे जीवनका निर्वाह करते हुए भगवान्की लीला कथाओंके स्मरण, कीर्तन आदिमें जीवनको सुखपूर्वक व्यतीत कर रहे थे।

दुष्ट दुर्योधन, छल-कपट विद्यामें निपुण कर्ण और दुःशासन आदिके साथ भ्राँति-भ्राँतिके उपायोंसे वनवासमें भी पाण्डवोंको सङ्कटमें डालनेकी युक्ति कर रहा था। उसी समय महातेजस्वी महर्षि दुर्वासाजी अपने दस हजार शिष्योंको साथ लेकर स्वेच्छासे दुर्योधनके निकट उपस्थित हुए। परम क्रोधी दुर्वासा मुनिको आये देख दुर्योधनने बहुत नम्रतापूर्वक उन्हें अतिथिके रूपमें निमन्त्रित किया। दुर्योधन स्वयं दासकी भ्राँति बड़ी सावधानीसे दिन-रात आलस्य छोड़कर उनकी सेवामें लगा रहा। मुनि बड़े विचित्र थे। वे कभी तो सभीके सो जानेपर आधी रातके समय भोजन माँगते, फिर स्नान करनेके लिए चले जाते, लौटकर

कहते कि मैं नहीं खाऊँगा, आज मुझे भूख नहीं है। फिर ऐसा कहकर अदृश्य हो जाते। कभी सुस्वादु भोजनकी भी निन्दा करते हुए भोजन करनेसे मना कर देते। किन्तु दुर्वासा ऋषिके विचित्र स्वभावसे दुर्योधनके मनमें विकार या क्रोध उत्पन्न नहीं हुआ। इससे वे दुर्धर्ष [जिन्हें प्रसन्न करना अति कठिन हो, ऐसे] मुनि बड़े प्रसन्न हुए और बोले—“मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ, मनमें जो भी इच्छा हो माँग लो।” दुर्योधन अपने दुष्ट मित्रोंसे परामर्शकर पहलेसे ही वर माँगनेके लिए प्रस्तुत था। वह बोला—“महर्षे! हमारे कुलमें महाराज युधिष्ठिर सबसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हैं। वे धर्मात्मा पाण्डुकुमार वर्तमानमें अपने भाईयोंके साथ काम्यवनमें निवास कर रहे हैं। आप कृपया जिस प्रकार मेरे अतिथि हुए हैं, उसी प्रकार अपने समस्त शिष्योंके सहित उनके भी अतिथि बन जाइये। मेरी विशेष प्रार्थना यह है कि आप द्रौपदीके भोजनके पश्चात् ही वहाँ पर पधारें।” दुर्वासाजी “तथास्तु” कहकर काम्यवनकी ओर चल दिये।

अपने दस हजार शिष्योंके साथ क्रोधी एवं दुर्धर्ष दुर्वासा मुनि काम्यवनमें पाण्डवोंके आश्रमपर पहुँचे। महारानी द्रौपदी समस्त वैष्णवों, ब्राह्मणों, अतिथियों और पाँचों पतियोंको भोजन कराकर स्वयं भी भोजन करनेके पश्चात् सुखपूर्वक विश्राम कर रही थी। महाराज युधिष्ठिर दुर्वासा मुनिको उनके शिष्योंके साथ आते देखकर उठ खड़े हुए और उनका सब प्रकारसे स्वागत किया। तत्पश्चात् उनकी विधिपूर्वक पूजाकर उन्हें भोजनके लिए निमन्त्रण दिया। ऋषिने कहा—“हमलोग स्नानकर अभी आ रहे हैं।” ऐसा कहकर ऋषि अपने शिष्यों सहित पास ही सरोवरमें स्नान करनेके लिए चले गये।

उधर धर्मकी रक्षाके लिए सजग रहनेवाली पतिव्रता शिरोमणि द्रौपदीको बड़ी चिन्ता हुई कि महर्षिको क्या खिलाया जाये, क्योंकि आश्रममें कुछ भी नहीं था। बहुत पहलेकी बात थी—धर्मराज युधिष्ठिरकी आराधनासे प्रसन्न होकर सूर्यदेवने उन्हें एक ऐसी बटलोई^(१) दी थी कि उस बटलोईमें पकाया हुआ भोज्य पदार्थ तब तक भरा-पूरा रहता था, जब तक द्रौपदी सबको खिला-पिलाकर स्वयं भोजन नहीं कर लेती थी। उसके खानेसे पूर्व हजारों या अगणित अतिथियोंको भोजन करानेपर भी उसका अन्न समाप्त नहीं होता था। किन्तु, आज बड़ी चिन्ताका विषय यह था कि द्रौपदीने भोजनके पश्चात् उस बर्तनको भी अच्छी तरहसे धोकर रख दिया था। सभी लोग बड़े चिन्तित थे तथा उन्हें कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। अन्तमें द्रौपदी मन-ही-मन कंसनिसूदन, आनन्दकन्द भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करने लगी। उस समय श्रीकृष्ण द्वारकामें अपने राजभवनमें शय्यापर विश्राम कर रहे थे, किन्तु द्रौपदीकी पुकार सुनकर भला कृष्ण कैसे रह सकते थे? वे शय्या छोड़कर तुरन्त द्रौपदीके निकट उपस्थित हुए।

द्रौपदीके शरीरमें मानो नवीन प्राणोंका सञ्चार हुआ। उसने श्रीकृष्णको प्रणामकर दुर्वासाके आगमन एवं युधिष्ठिर महाराज द्वारा उन्हें भोजनके निमन्त्रण आदिका समस्त वृत्तान्त सुनाया तथा उपस्थित विपत्तिसे रक्षा करनेके लिए प्रार्थना करती हुई बोली—“हे भक्तवत्सल! मैं आपकी शरणमें हूँ। आप सबके आश्रय हैं। आप ही परात्पर, समस्त ईश्वरोंके भी ईश्वर और सर्वसमर्थ हैं, अतः वर्त्तमान सङ्कटसे हमारा उद्धार करें।”

(१) रन्धनके लिए पीतलका पात्र

तब भगवान् श्रीकृष्णने कहा—“मुझे बड़ी भूख लगी है। अतः पहले मुझे अतिशीघ्र भोजन कराओ।” उनकी बात सुनकर द्रौपदी बड़ी लज्जित हुई और बोली—“भगवन्! सूर्यदेवकी दी हुई बटलोईका अन्न समाप्त हो चुका है। सबको खिला-पिलाकर मैंने भी भोजन कर लिया है।” कृष्णने द्रौपदीसे बटलोई मँगवायी। उसके भीतर सागका एक छोटा-सा टुकड़ा चिपका हुआ था। श्रीकृष्णने अपनी अङ्गुलियोंसे उसे निकालकर खा लिया और ऊपरसे पेट भर पानी पी लिया और डकार लेते हुए बोले कि सागके कणसे सम्पूर्ण विश्वके आत्मा, यज्ञोंके भोक्ता सर्वेश्वर भगवान् तृप्त और सन्तुष्ट हों। तत्पश्चात् श्रीकृष्णने मुनियोंको शीघ्र ही बुलानेके लिए सहदेवको भेजा। मुनि लोग उस समय सरोवरमें स्नानकर मन्त्रका जप रहे थे। अकस्मात् उन्हें बार-बार अन्न-रससे युक्त डकारें आने लगीं, उनका पेट पूर्ण रूपसे भर गया। वे सभी मुनि दुर्वासाकी ओर देखकर बोले—“हमारा पेट पूर्ण रूपसे भर गया है। अब हम युधिष्ठिर महाराजजीके यहाँ भोजन करनेमें समर्थ नहीं हैं।” दुर्वासाजीने कुछ विचारकर कहा—“मुनियो! दुष्ट दुर्योधनका अन्न खाकर उसके परामर्शसे महात्मा पाण्डवोंके प्रति हमने महान अपराध किया है। मैं परम भक्त अम्बरीष महाराजके प्रभावको स्मरणकर भयभीत हो रहा हूँ। कहीं पाण्डवोंके अपराधसे हमारा सर्वनाश न हो जाये, अतः यहाँसे भाग चलनेमें ही कल्याण है।” ऐसा कहकर वे सभी मुनियोंके साथ इधर-उधर दशों दिशाओंमें भाग गये।

सहदेवने सर्वत्र ढूँढ़नेपर भी मुनियोंको कहीं नहीं देखा। वे उस सरोवरके निकट रहनेवाले तपस्वी मुनियोंके मुखसे उनके भागनेका समाचार सुनकर युधिष्ठिरके पास लौट आये और

सारा वृत्तान्त उन्हें निवेदन किया। श्रीकृष्णकी कृपासे पाण्डवोंका सङ्कट टल गया।

भली प्रकारसे विचार करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि महर्षि दुर्वासाजी परम भगवत्-भक्त हैं। कभी-कभी वे ज्ञानियों तथा योगियोंसे भक्तोंकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन करनेके लिए भिन्न-भिन्न प्रकारके अद्भुत् उपायोंका अवलम्बन करते हैं, जिसे साधारण लोगोंके लिए समझ पाना बड़ा कठिन है।

गोपियाँ द्वारा श्रीदुर्वासा ऋषिकी सेवा तथा दुर्वासाजी कर्ता अभिमानसे रहित

किसी पर्वके अवसर पर गोपियाँ वृन्दावनसे महर्षि दुर्वासाके दर्शनके लिए यमुना पार दुर्वासाजीके आश्रममें जाना चाहती थीं। उनके सिर पर मीठे-मीठे सुस्वादु पकवानोंसे भरे हुए बड़े-बड़े थाल थे। जब वे यमुनाके तटपर उपस्थित हुईं, तो उन्होंने देखा कि यमुनामें बाढ़ आयी हुई है तथा उसमें बड़ी-बड़ी तरङ्गें उठ रही हैं। पार उतारनेके लिए कोई नाव भी प्रस्तुत नहीं है। बड़ी भीषण स्थिति थी, हठात् उन्होंने श्रीकृष्णको अपनी ओर आते देखा। कृष्णने पूछा कि आपलोग कहाँ जा रही हैं? गोपियोंने कहा—“हम दुर्वासाजीका दर्शन करनेके लिए उस पार जाना चाहती हैं, किन्तु यमुनामें भयानक बाढ़के कारण हम बड़ी चिन्तित हो रही हैं। आप ही बतलाएँ हम कैसे यमुनाको पार करें?” श्रीकृष्णने गम्भीर होकर कहा—“तुम यमुनासे कहना यदि कृष्णने कभी किसी स्त्रीकी ओर नहीं देखा है, कभी स्त्रियोंसे सङ्ग नहीं किया है, तो कृष्णके इस प्रभावसे हम आपके ऊपरसे होकर उस पार चली जायें।” गोपियोंने यमुनाको प्रणामकर कृष्णने

जैसा कहा था, वैसा ही कहा और यमुना जलके ऊपर पैदल चलकर ही उसे पार कर लिया और दुर्वासा ऋषिके आश्रममें पहुँचीं।

गोपियोंने श्रद्धापूर्वक दुर्वासा ऋषिको प्रणामकर उन्हें अपने साथ लाये हुए विभिन्न प्रकारके पकवानोंको अर्पण कर दिया। क्षणमात्रमें ही ऋषिने सारे पकवानोंका भक्षण कर लिया। कुछ भी उच्छिष्ट नहीं छोड़ा और गोपियोंको उनके अभिलषित आशीर्वाद प्रदान किये। जब गोपियाँ जानेके लिए प्रस्तुत हुईं, तो उन्होंने महर्षि दुर्वासासे यमुनाको पार करनेका उपाय पूछा। दुर्वासाजीने पूछा कि आपलोगोंने आते समय यमुनाको कैसे पार किया था? गोपियोंने उत्तर दिया—“श्रीकृष्णके निर्देशसे हमने यमुनाजीसे कहा कि यदि कृष्णने कभी भी किसी स्त्रीका सङ्ग या स्त्रीको देखा तक नहीं हो, तो उसके प्रभावसे हम यमुनाजीको पार कर जायें। ऐसा कहनेसे यमुनाजीने हमें पथ प्रदान किया तथा हमने पैदल ही यमुनाको पार कर लिया।” दुर्वासाजी बोले—“अब तुमलोग यमुनाके समीप यह कहना कि यदि महर्षि दुर्वासाने जीवन भर कभी कुछ नहीं खाया है, तो उनके उस प्रभावसे हम आपको पैदल ही पार कर जायें।” गोपियोंने ऐसा ही किया और सहज ही यमुनाको पार कर लौट आयीं।

गोपियाँ लौटकर जब श्रीकृष्णसे मिलीं, तब उन्होंने श्रीकृष्णसे प्रश्न किया कि आप और दुर्वासा—दोनों ही बड़े अद्भुत और दुर्बोध हैं। दिन-रात गोपियोंके साथमें रहनेवाले आप कभी भी स्त्री दर्शन नहीं करते और दुर्वासाजीने हमलोगोंके सामने ही हमारे समस्त पकवान खा लिये, किन्तु वे कहते हैं कि उन्होंने जीवनमें कुछ खाया नहीं है। आप दोनोंके वचनोंको हम समझ

नहीं पा रही हैं। कृष्णने कहा—“मैं सब कुछ करते हुए भी कुछ नहीं करता। मुझमें संसारी लोगोंके जैसा कर्त्तापन और भोक्तापनका अभिमान नहीं है। दुर्वासाजीमें भी स्थूल या सूक्ष्म शारीरिक या मानसिक कर्त्ता और भोक्तरूप स्थूल अभिमान नहीं है, इसलिए वे सबकुछ खाकर भी कुछ नहीं खाते। हमें समझना साधारण लोगोंके लिए अत्यन्त कठिन है। विरले तत्त्वज्ञानी ही हमें समझ सकते हैं।” श्रीकृष्णने गोपियोंके माध्यमसे जगत्को इस तत्त्वकी शिक्षा दी है।

दुर्वासा ऋषि द्वारा श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणीजीको वरदान प्रदान

एक समयकी बात है, एक अद्भुत ब्राह्मण द्वारकामें आये। वे चिथड़े पहनकर तथा हाथमें बेलके वृक्षकी लकड़ीसे बना डण्डा लिये घूम रहे थे। उनकी दाढ़ी और मूछें भी बढ़ी हुई थी। वे और कोई नहीं बल्कि दुर्वासा मुनि ही थे। दुर्वासा शब्दका अर्थ है—फटे पुराने चिथड़े, मैले-कुचैले वास अर्थात् कपड़ोंको धारण करनेवाला अथवा केवल दूर्वा घासके रसको पीकर जीवित रहनेवाला। दुर्वासाजी कभी-कभी दूर्वा ग्रहणकर प्राण धारण करते थे। वे कभी मैले-कुचैले चिथड़ोंको धारणकर लज्जा निवारण करते थे, इसलिए लोग उन्हें दुर्वासाके नामसे जानते थे।

दुर्वासाजी द्वारकाके बड़े-बड़े राजमार्गों, गलियों, कूचों और चौराहोंपर उच्च स्वरसे कहते हुए घूम रहे थे कि मुझे दुर्वासा ब्राह्मणको कौन अपने घरमें सत्कारपूर्वक ठहरायेगा। मैं बहुत ही क्रोधी हूँ। जो मुझे अपने घरमें ठहराये, वह मुझपर क्रोध न दिखाये और मेरी सेवा करे। जब किसीने भी उन्हें अपने

घरमें नहीं ठहराया, तब भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें अपने राजभवनमें अतिथिके रूपमें ठहराया और स्वयं यथोचित रूपमें उनकी सेवा-शुश्रूषा करने लगे। दुर्वासाजी कभी हजार मनुष्योंका भोजन अकेले ही खा लेते, कभी असमयमें भोजन माँगते, कभी बहुत अधिक खाते, कभी अकारण ही क्रोध कर बैठते, तो कभी अकस्मात् ही जोर-जोरसे रोने लगते तथा कभी अचानक हँसने लगते। एक दिन उन्होंने अपने ठहरनेके स्थानपर बिछी हुई शय्याओं, बिछावनों इत्यादिको जलाकर भस्म कर दिया और स्वयं वहाँसे चले गये। थोड़ी देर बाद श्रीकृष्णके समीप उपस्थित होकर बोले—“कृष्ण! मैं बहुत ही भूखा हूँ, मुझे तुरन्त स्वादिष्ट खीर खिलाओ।”

श्रीकृष्ण मानो पहलेसे ही प्रस्तुत थे। श्रीकृष्णने उसी समय मुनिके समक्ष स्वादिष्ट खीर प्रस्तुत की। ऋषिने थोड़ी-सी खीर खाकर श्रीकृष्णको आदेश दिया कि तुम इस गरमागरम खीरका अपने समस्त अङ्गोंमें लेप कर लो। श्रीकृष्णने वैसा ही किया। उन्होंने अपने सिर तथा समस्त अङ्गोंमें उस जूठी खीरका लेप किया और सामने खड़ी हुई, मुस्कुराती हुई रुक्मिणीजीके अङ्गोंमें भी खीरका लेप कर दिया। इतनेमें विचित्र दुर्वासा मुनिने सामने खड़े हुए एक रथमें महारानी रुक्मिणीको घोड़ेकी जगह जोत दिया और स्वयं उस रथपर बैठकर रुक्मिणीजीको चलनेके लिए निर्देश दिया। दुर्वासाजी अपने तेजसे अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे। वे कृष्णके सामने ही भोली-भाली रुक्मिणीको चाबुकसे भी मारने लगे। यह देखकर यादवोंको बड़ा क्रोध हुआ। बेचारी रुक्मिणी रास्तेमें लड़खड़ाकर गिर पड़ीं, परन्तु दुर्बोध मुनिने फिर भी चाबुकसे उन्हें हाँकना नहीं छोड़ा। जब

वे नहीं उठीं, तो दुर्वासाजी रथसे कूदकर भागने लगे। श्रीकृष्ण उसी अवस्थामें शरीरमें खीर पोते हुए ही दुर्वासाके पीछे-पीछे दौड़ने लगे तथा कहने लगे कि भगवन्! आप प्रसन्न होवें। दुर्वासाजी कृष्णकी ओर देखकर बोले—“महाबाहो श्रीकृष्ण! तुमने स्वभावसे ही क्रोधको जीत लिया है, हे गोविन्द! मैंने यहाँ तुम्हारा कोई भी अपराध नहीं देखा। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। अतः तुम मुझसे मनोवाञ्छित वर माँग लो। श्रीकृष्ण द्वारा कुछ भी वर न माँगनेपर दुर्वासा ऋषिने स्वयं ही उन्हें वरदान देते हुए कहा—तीनों लोकोंमें अनन्त काल तक तुम्हारी पुण्य कीर्त्ति बनी रहेगी तथा त्रिभुवनमें तुम प्रधान बने रहोगे। तुम्हारी जो-जो वस्तुएँ मैंने तोड़ी-फोड़ी, जलाई या नष्ट कर दी हैं, वे यथापूर्व हो जायें। तुम्हारे अङ्गोंमें जहाँ तक खीर लगी हुई है, वहाँ तकके अङ्गोंमें चोट लगनेसे तुम्हें मृत्युका भय नहीं रहेगा। हे अच्युत! तुम जब तक चाहोगे इस जगत्में अजर-अमर बने रहोगे। किन्तु, तुमने अपने पैरोंके तलवोंमें जूठी खीर नहीं लगायी। तुमने ऐसा क्यों किया? तुम्हारा यह कार्य मुझे प्रिय नहीं लगा।” तत्पश्चात् कृष्णके अङ्ग अद्भुत कान्तिमय हो उठे, ऋषिने रुक्मिणीसे भी प्रसन्नतापूर्वक कहा—“बेटी रुक्मिणी, तुम सम्पूर्ण विश्वकी स्त्रियोंमें परम यशस्विनी होओगी और सभी लोकोंमें सर्वोत्तम कीर्त्तिको प्राप्त करोगी। तम्हें बुढ़ापा या रोग कभी नहीं ग्रास करोगा। तुम्हारी अङ्गकान्ति कभी नष्ट नहीं होगी। तुम कृष्णकी सोलह हजार रानियोंमें प्रधान तथा कृष्णकी सर्वाधिक प्रियतमा होओगी। ऐसा कहकर दुर्वासाजी तत्क्षण अन्तर्धान हो गये।

मौषल-संहार-लीला और श्रीदुर्वासा ऋषि

अचिन्त्य प्रभावसे सम्पन्न भगवान् श्रीकृष्णने चतुरतापूर्वक कौरवों और पाण्डवोंमें महाभारतका युद्ध कराकर पृथ्वीका भार अनेक अंशोंमें उतार दिया था। श्रीबलदेवजीके साथ स्वयं कृष्णने भी भू-भारस्वरूप असुर श्रेणीके राजाओंका वध किया था, परन्तु दुर्जेय यदुकुलके विद्यमान रहनेके कारण कृष्ण निश्चिन्त नहीं हो सके थे। वे यदुकुलका भी ध्वंस करवाकर निश्चिन्त रूपमें स्वधाम गमन करना चाहते थे।

साधारण रूपमें शास्त्रोंका यह विचार है कि जो लोग भगवान्की सेवा करते हैं, वे दैव स्वाभावापन्न साधु या भक्त कहलाते हैं। इसके विपरीत कृष्णसेवासे विमुख व्यक्ति असुर या दैत्य कहलाते हैं। दैत्य या असुरगण स्वाभाविक रूपसे कृष्णका संहार करनेकी चेष्टा करते हैं। ऐसे दैत्य-दानवोंके संहारके द्वारा ही श्रीकृष्णके द्वारा युगावतारका कार्य सम्पन्न होता है। अधिकांश लोगोंकी यह धारण है कि भगवान्का अंश होनेके कारण यदुवंश पृथ्वीका भार नहीं हो सकता, क्योंकि उनमें कृष्णसेवाकी भावना निहित रहती है। किन्तु, इस विषयको भली-भाँति समझनेकी चेष्टा करनी चाहिये कि कौरव और पाण्डव भी श्रीकृष्णके सम्बन्धी और कुटुम्बी थे। वे भी पृथ्वीका भार बढ़ानेके लिए आविर्भूत नहीं हुए थे। किन्तु, उनमेंसे पाण्डवगण कृष्णके सेवक थे। वे सदा-सर्वदा कृष्णकी सेवामें तत्पर रहते थे, किन्तु दुर्योधन आदि कृष्णके सम्बन्धी होनेपर भी दुष्ट स्वभाववाले महा-अत्याचारी, कृष्णसे विमुख दैत्य-दानव ही थे। परस्पर कलहके द्वारा ही कौरवों तथा पाण्डवोंमें युद्ध

हुआ और उस युद्धमें मारे गये दोनों पक्षोंके योद्धाओंके द्वारा ही श्रीकृष्णने विमुख व्यक्तियोंका संहार करवाया था। किन्तु, श्रीकृष्णने इन दोनों युद्धोंमें कृष्ण-सेवामें तत्पर भक्तों या परिकरोंका संहार नहीं करवाया था। उसमें केवल पृथ्वीके भारस्वरूप दैत्य-दानवोंका संहार करवाकर पृथ्वीका भार उतारा था।

यदुवंशियोंमें भी भगवान् श्रीकृष्णकी सेवामें तत्पर रहनेवाले जो उनके परिकर थे, उन्होंने भगवान्के साथ ही अप्रकट लीलामें प्रवेश किया था। किन्तु कृष्णसे विमुख यादवगण जनसाधारणकी दृष्टिमें अपनेको कृष्णकी भाँति पूज्य समझकर लोगोंमें भ्रम उत्पन्न कर रहे थे। केवल ऐसे कृष्णविमुख यादवोंको ही परस्पर कलहमें ध्वंस करवाकर पृथ्वीका बचा हुआ भार भी श्रीकृष्णने हरण किया था। वास्तवमें यदुवंशियोंकी ध्वंस-लीला इन्द्रजालके समान थी, जिसके द्वारा कृष्णके परिकर अपने-अपने नित्य धामोंमें उपस्थित हुए थे और बाकी असुर स्वभावके यादव लोग मारे गये थे।

महाभारत युद्धके बाद छत्तीस वर्ष बीत चुके थे। कृष्ण अपने परिकरोंके साथ द्वारकापुरीमें नाना प्रकारकी लीलाएँ करते हुए सुखसे निवास कर रहे थे। वे अब वहाँ मूर्तिमान कालके रूपमें ही निवास करने लगे। अब उन्होंने अपनी लीला सम्वरण करनेकी इच्छा की। उनकी प्रेरणासे विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अङ्गिरा, अत्रि, वशिष्ठ, नारद आदि मुनि द्वारकाके समीप पिण्डारक नामक तीर्थ क्षेत्रमें एकत्रित होकर भगवत्-कथाके गुण-गानमें तत्पर हो रहे थे। एक दिन यदुवंशके कुछ उद्दण्ड बालक खेलते-खेलते उनके समीप जा पहुँचे।

बालक जाम्बवतीनन्दन साम्बको स्त्रीका वेश धारण कराके वहाँ ले गये तथा उन्होंने बनावटी नम्रतासे मुनियोंके चरणोंमें प्रणामकर उनसे पूछा—“ब्राह्मणो! यह कजरारी आँखोंवाली सुन्दरी गर्भवती है। यह एक बात पूछना चाहती है, परन्तु स्वयं पूछनेमें संकोच करती है। इसे पुत्र प्राप्तिकी बड़ी लालसा है, इसके प्रसवका समय भी निकट आ गया है। आप सर्वज्ञ हैं। अतः आप लोग बताइये कि इसे पुत्र उत्पन्न होगा या कन्या?” पहले तो मुनिजन चुपचाप रहे, उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया, किन्तु जब बालकोंने उन ऋषि-मुनियोंको धोखा देनेके लिए बार-बार प्रश्न करना आरम्भ किया, तब वे भगवत्-प्रेरणासे क्रोधित हो उठे। उनमें संहारकर्त्ता महादेव शङ्करके अंशभूत महर्षि दुर्वासा अग्रणी थे। उन्होंने कहा—“मूर्खो! यह एक ऐसा मूसल पैदा करेगी, जो तुम्हारे कुलका नाश करनेवाला होगा।” मुनियोंकी बात सुनकर वे बालक बहुत ही भयभीत हो गये। उन्होंने तुरन्त साम्बका पेट खोलकर देखा तो सचमुच उसमेंसे एक लोहेका मूसल निकला। वे घबराकर मूसलको लेकर महाराज उग्रसेनके समीप पहुँचे और उन्हें सारी घटना कह सुनायी। महाराज उग्रसेन और द्वारकावासी अपनी आखोंसे उस मूसलको देखकर विस्मित और भयभीत हो गये, क्योंकि वे जानते थे कि ब्राह्मणोंका शाप कभी झूठा नहीं होता।

महाराज उग्रसेनने उस मूसलको चूर-चूर करा डाला और उस चूरे तथा अन्तमें लोहेके बचे हुए छोटे-से टुकड़ेको समुद्रमें फेंकवा दिया। उस लोहेके टुकड़ेको एक मछली निगल गयी। चूरा तरङ्गोंके साथ बहकर समुद्रके किनारे आ लगा। थोड़े ही दिनोंमें उस चूरेके कण एक एक (एक बिना गाँठकी घास)

के रूपमें उग आये। वह मछली भी मछुआरोंके जालमें पकड़ी गयी। उस मछलीके पेटमें जो लोहेका टुकड़ा था, उसको जरा नामक बहेलियेने अपने बाणके नोकमें लगा लिया। यद्यपि भगवान् सब कुछ जानते थे तथा वे इस शापको उलट भी सकते थे, किन्तु फिर भी कालरूपधारी प्रभुने ब्राह्मणोंके शापका अनुमोदन ही किया।

द्वारकामें बड़े-बड़े उत्पात होने लगे। इन अपशकुनोंको देखकर भगवान् श्रीकृष्ण कुछ वृद्धोंको द्वारकामें छोड़कर समस्त यादवोंको साथमें लेकर पिण्डारक तीर्थमें स्नान और दान-पुण्य करनेके लिए गये। स्नान और दान-पुण्यके पश्चात् भगवत्-प्रेरणासे यादवगण मैरेय नामक मधु पानकर परस्पर लड़ने-झगड़ने लगे। उन्होंने क्रोधवश समुद्र तटपर उगे हुए एक नामक सरकण्डोंको उखाड़कर एक दूसरेका संहार करना आरम्भ कर दिया। यह देखकर बलदेव प्रभु समुद्र तटपर उपस्थित होकर वहाँसे स्वधाम चले गये। श्रीकृष्ण भी भक्त उद्धव और मैत्रेयजीको उपदेश देकर जरा नामक व्याध द्वारा छोड़े गये बाण लगनेका बहाना बनाकर सशरीर गोलोक वृन्दावनमें पधारे। यदुवंशमें उत्पन्न असुर स्वभाव-सम्पन्न लोग उस कलहमें मारे गये। इस प्रकार पृथ्वीका भार उतारकर भगवान् श्रीकृष्ण स्वधाममें उपस्थित हुए। इस मौषल-संहार-लीलामें दुर्वासा आदि ऋषि केवल निमित्त कारण थे, वास्तवमें भगवत्-इच्छा ही प्रधान कारण थी।



ईशापुरमें स्थित दुर्वासा आश्रम

महर्षि दुर्वासा श्रीशङ्करजीके अवतार अथवा प्रकाश हैं। शङ्करजीके ईश्वर होनेके कारण उनका निवास स्थान ईशापुरके नामसे भी प्रसिद्ध है। वर्तमान समयमें ब्रजमण्डलके अन्तर्गत मथुरामें विश्रामघाटसे यमुनाके उसपार ईशापुरमें दुर्वासा आश्रम स्थित है।

विष्णुपुरमें स्थित श्रीदत्तात्रेयजीका आश्रम

दुर्वासा ऋषिके आश्रमके पास ही यमुनाके तटपर श्रीदत्तात्रेयजीका आश्रम था। दत्तात्रेयजी भगवान् विष्णुके अशांवतार हैं। ये भी अनुसूयाजीके तीन पुत्रोंमेंसे एक हैं। श्रीमद्भागवतके सप्तम स्कन्धमें इनका नामोल्लेख पाया जाता है। इन्होंने प्रह्लाद महाराजको वर्णाश्रमधर्म तथा तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया था। श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें भी इनके चरित्रका वर्णन किया गया है। भगवान् श्रीकृष्णने अपनी अप्रकट लीलासे पूर्व भक्त उद्धवजीको उपदेश देते समय अवधूत दत्तात्रेयजी एवं यदु महाराजके संवादको सुनाया था। इस संवादमें सत्ययुगमें अवधूत दत्तात्रेयजीने अपने चौबीस शिक्षा गुरुओंका उल्लेखकर महाराज यदुको तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया था। जहाँ दत्तात्रेयजीका आश्रम था, आजकल वह स्थान विष्णुपुरके नामसे प्रसिद्ध है। द्वापरयुगमें मल्लाह लोग यहाँपर बस गये और आज भी इस गाँवमें मल्लाहोंकी ही प्रधानता है।

श्रीपराशर मुनि एवं उनके पुत्र श्रीवेदव्यासका आश्रम

दुर्वासा ऋषि आश्रमके समीप ही पराशर मुनिका आश्रम था, जो कि नाना प्रकारके फल-फूलोंसे युक्त वृक्ष और लताओंसे सुशोभित परम रमणीक स्थान था। कालक्रमसे यमुनाके बहाव एवं कटावके कारण वर्तमान कालमें उस आश्रमका कोई चिह्न नहीं मिलता। फिर भी शास्त्रोंके अनुसार द्वापरके अन्त तक कहीं पासमें ही पराशरजीका आश्रम था।

ब्रह्माजीके मानस पुत्र ब्रह्मर्षि वशिष्ठजीके एक पुत्रका नाम शक्ति ऋषि था। पराशरजी शक्ति ऋषिके पुत्र थे। उनकी माताका नाम अदृश्यन्ती था। वशिष्ठजीने ही स्वयं अपने पौत्रका सब प्रकारसे पालन-पोषण किया था। उनका सारा संस्कार पितामह वशिष्ठजीने ही करवाया था।

धर्मात्मा पराशर वशिष्ठजीको ही अपना पिता मानते थे और जन्मसे ही उनके प्रति पितृभाव रखते थे। उन्होंने अपनी मातासे यह सुना कि पुत्र! वशिष्ठजी तुम्हारे पिता नहीं, बल्कि पिताके भी पिता हैं। तुम्हारे पिताको तो वनके भीतर राक्षस खा गये थे। यह सुनकर पराशरजी दुःखसे आतुर हो उठे। उन्होंने तपस्याके द्वारा सब लोकोंको नष्ट कर डालनेका विचार किया, किन्तु वशिष्ठजीने तत्त्वज्ञान देकर उन्हें ऐसा करनेसे रोक दिया।

पराशरजी बहुत बड़े तपस्वी एवं परम भगवत्-भक्त थे। समाजके कल्याणके लिए उनके द्वारा लिखित पराशर स्मृति, अठारह स्मृतियोंमेंसे एक प्रमुख स्मृति है, जिसके द्वारा आज भी भारतीय हिन्दू समाज सञ्चालित होता है।

एक समय पराशर मुनि तीर्थयात्रा करते हुए यमुनाके तटपर उपस्थित हुए और यमुना पारकर अपने आश्रममें जाना चाहते थे। सन्ध्याका समय हो चुका था। उन्होंने देखा कि एक कुमारी नौका द्वारा लोगोंको आर-पार ले जाती है। पराशरजी अकेले ही थे। वे उसकी नौकामें चढ़कर यमुनाको पार करने लगे।

वह नौका चलानेवाली युवती और कोई नहीं मत्स्यगन्धा थी। मत्स्यगन्धा उपरिचर वसुके वीर्य द्वारा ब्रह्माजीके शापसे मछली रूपको प्राप्त हुई अद्रिका नामक अप्सराके गर्भसे उत्पन्न हुई थी। मल्लाहोंने मछलीके पेटसे इसे प्राप्त किया था। इसीलिए इसका नाम मत्स्यगन्धा था। मल्लाहोंके सरदार दाशराजने इसे अपनी कन्या मानकर इसका पालन-पोषण किया था। यह परम सुन्दरी थी। सत्य एवं नाना प्रकारके सद्गुणोंसे सम्पन्न होनेके कारण यह सत्यवतीके नामसे प्रसिद्ध हुई। सत्यवती पिताकी सेवाके लिए यमुनाजीमें नाव चलाया करती थी। पराशर मुनि उसके मनमोहक रूप-सौन्दर्यको देखकर मुग्ध हो गये। उन्होंने उसके साथ समागमकी इच्छा प्रकट की, परन्तु शील स्वभाव और सदाचार-सम्पन्ना मत्स्यगन्धाने सरल हृदयसे कहा—“पूज्य! कन्याभाव दूषित होनेपर मैं कैसे अपने घर जा सकती हूँ। मुनिवर! मैं कलङ्कित होनेपर जीवित रहना नहीं चाहती।”

मत्स्यगन्धाके ऐसा कहनेपर मुनिश्रेष्ठ पराशरजीने कहा कि तुम जो चाहो मुझसे वर ले लो। पुत्र होनेपर भी तुम्हारा कन्याभाव बना रहेगा। तुम्हारे अङ्गोंसे मछलीकी गन्ध दूर हो जायेगी तथा उसके स्थानपर तुम्हारे अङ्गोंसे उत्तम सुगन्ध निकलेगी जो एक योजन तक भूमण्डलपर व्याप्त रहा करेगी। तुम्हारे गर्भसे भगवान्का अंश जन्म-ग्रहण करेगा, यह जो कुछ हुआ भगवान्की

इच्छासे ही हुआ। ऐसा कहते ही पराशरजीके दिव्य तेजसे उसे गर्भ हुआ और साथ-ही-साथ एक महद्भुत शिशुका जन्म हुआ। देखते-देखते वह शिशु सोलह वर्षकी युवावस्थाको प्राप्त हो गया। ये पराशरनन्दन बादमें कृष्णद्वैपायन वेदव्यासके नामसे प्रसिद्ध हुए। यमुनाके द्वीपमें जन्म होनेके कारण ये 'द्वैपायन' और वेदोंका विभाग करनेके कारण वेदव्यासके नामसे प्रसिद्ध हुए। पराशरनन्दन व्यासदेवने माता सत्यवतीको यह आश्वासन दिया—“जब कभी भी आप मुझे आह्वान करेंगी, मैं तुरन्त आपके निकट आकर आपकी अभिलाषाको पूर्ण करूँगा।” ऐसा कहकर वे यमुनाके द्वीपसे तपस्याके लिए कहीं अन्यत्र चले गये।

तदनन्तर सत्यवती भी प्रसन्नतापूर्वक अपने घर लौट गयी। उस दिनसे सत्यवतीके पिता दाशराज भी उसके अङ्गोंकी उत्तमगन्धका घ्राणकर बहुत प्रसन्न हुए।

व्रजमें ऐसी मान्यता है कि व्यासदेवजीने व्रजमण्डलके अन्तर्गत मथुरामें यमुनाके कृष्णगङ्गा नामक घाटपर स्थित अपने आश्रममें रहकर श्रीमद्भागवत जैसे रसपूर्ण 'अमल महापुराण' को समाधिमें प्राप्तकर जगत्के कल्याणके लिए यहींपर उसका प्रकाश किया। इसका कारण यह है कि व्रजमें वास किये बिना अथवा स्वयं-भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण एवं उनकी स्वरूपशक्ति श्रीराधिकाजीकी आराधना और कृपाके बिना ऐसा अनुपम ग्रन्थ प्रकाश करना असम्भव है। अतः यमुनाके तटपर कहीं निकटमें व्यासदेवजीका भी आश्रम अवश्य ही रहा होगा। व्यासजीका आश्रम कृष्णगङ्गा घाटके समीप ही रहा होगा, जहाँसे चक्रतीर्थ एवं अम्बरीष महाराजजीका टीला निकट ही है।

ऐसा सम्भव है कि मत्स्यगन्धाका पालन-पोषण करनेवाले मल्लाहोंके सरदार दाशराज भी वर्तमान विष्णुपुरमें ही निवास करते थे और सत्यवती वहीं अपने पिताके घर रहती थी। अतएव महर्षि दुर्वासाजीका आश्रम और उसके निकट भगवान् दत्तात्रेयका आश्रम, महर्षि पराशर एवं श्रीवेदव्यासजीका आश्रम पास-पास ही था। अतः यह दुर्वासा ऋषि आश्रम ऐतिहासिक, पौराणिक एवं कृष्णकी लीला-स्थली होनेके कारण—सभी दृष्टिकोणोंसे बहुत ही महत्वपूर्ण है।



